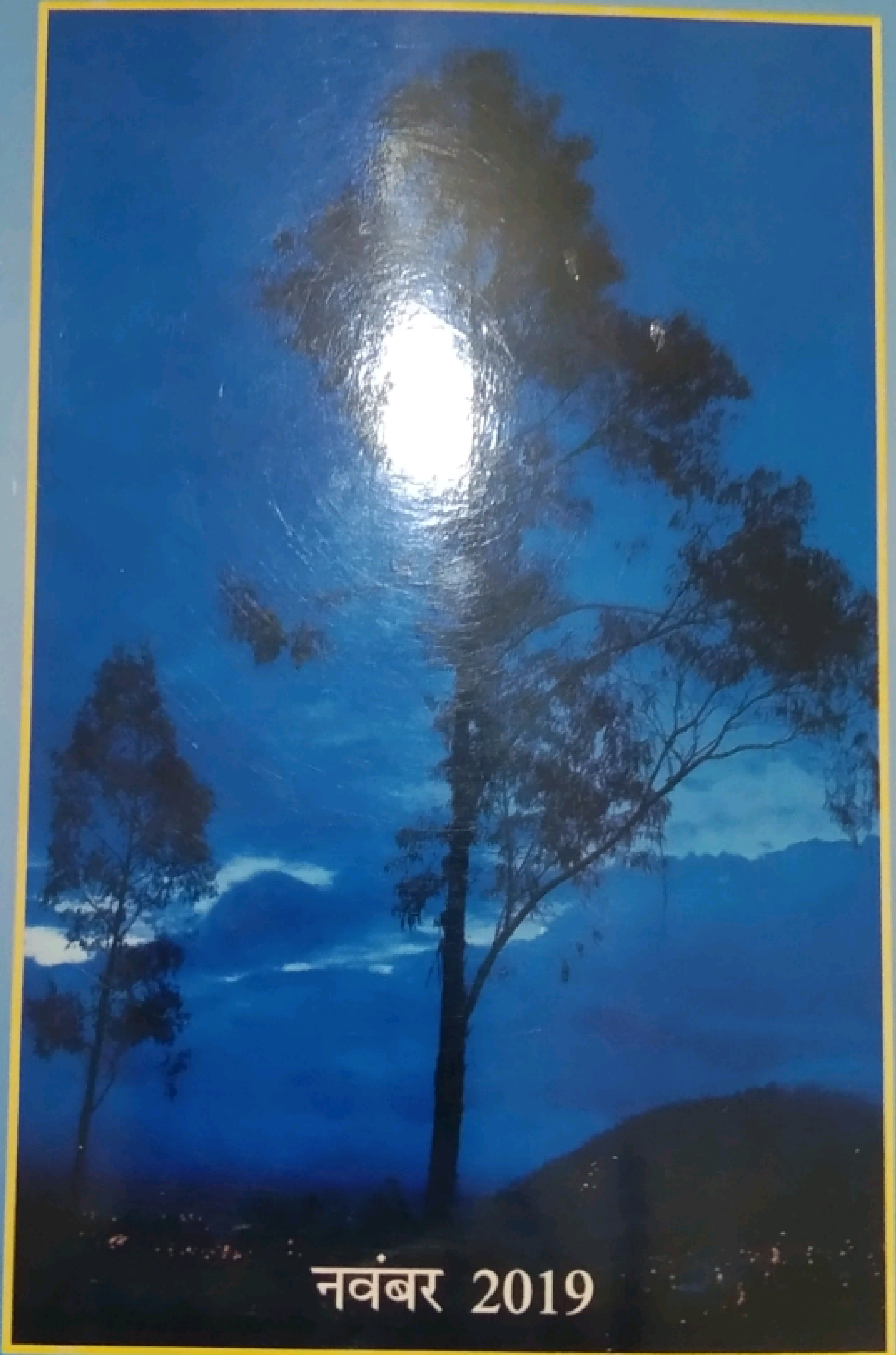
वेद-सविता



कहां क्या?

वैदिक चिंतन

जीवन की प्रसाधना, स्वामी विद्यानंद 'विदेह', पृष्ठ 4
'मनसः काममाकूतिं ...' (यजुर्वेद 39.4)
वैर त्याग, अभयदेव शर्मा, पृष्ठ 7
'प्राची दिग् अग्निर् ...' (अथर्ववेद 3.27.1)
अक्षक्रीड़ा (निषिद्ध), प्रवेश सक्सेना, पृष्ठ 25
'अक्षास इदङ्कुशिनो ...' (ऋग्वेदः 10.34.7)
मंत्र गीतिका, बद्रीप्रसाद पंचोली, पृष्ठ 28
'बळित्था पर्वतानां ...' (ऋग्वेद 5.84.1)
हम आर्य बनें, सुषमा वर्मा, पृष्ठ 31
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ...' (ऋग्वेद 9.63.5)
द्वेष से दूर रहें, देवकृष्ण दाश, पृष्ठ 32
'मा भ्राता भ्रातरं ...' (अथर्ववेद 3.30.3)
प्रभु मैत्री अटूट है, संतोष भारद्वाज, पृष्ठ 34
'दुणाशं सख्यं तव ...' (ऋग्वेद 6.45.26)
तीन देवियां, अशोक जौहरी, पृष्ठ 39
'इळा सरस्वती मही ...' (ऋग्वेद 1.13.9)
क्या वेदों में इतिहास है? किरण आर्या, पृष्ठ 43
'बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं ...' (ऋग्वेद 10.71.1)
संजीवनी बूटी, वरुणदेव शर्मा, पृष्ठ 49
'यो अग्निं तन्वो ...' (ऋग्वेद 8.44.15)
ईश्वर का सच्चा स्वरूप, सुरिंद्र चौधरी, पृष्ठ 50
'न तस्य प्रतिमा अस्ति ...' (यजुर्वेद 32.3)
समय के पाबंद स्वामी 'विदेह', ऋतम्भरा, पृष्ठ 55
'कालो अश्वो वहति ...' (अथर्ववेद 19.53.1)
दैवी संपदा, विमला वर्मा, पृष्ठ 57
'देवो देवेभिरा गमत् ...' (ऋग्वेद 1.1.5)

क्या वेदों में इतिहास है?

किरण आर्या

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः।

ऋग्वेद 10.71.1

(बृहस्पते) हे बृहस्पति! (प्रथमम्) सृष्टि के आदि में (नाम-धेयम्) प्रत्येक वस्तु के नाम को (दधानाः) नामित करनेवाले ऋषियों ने (यत् प्रैरत) जिन जिन पदार्थों को प्रेरित किया, चुनाव किया, (वाचः) उन पदार्थों का वह वाचिक नामकरण (अग्रम्) आदि नामकरण था। (एषाम्) इन ऋषियों का (यत्) जो (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ, (यत् अरिप्रम् आसीत्) जो पाप-रहित वेदार्थज्ञान था, (तत्) वह (गुहा नि-हितम्) हृदय गुहा में वर्षों से छिपा हुआ था। (एषाम्) इनका वह ज्ञान (प्रेणा) ईश्वरीय प्रेम या प्रेरणा से (आविः) आविर्भूत हुआ।

प्रस्तुत मंत्र कहता है कि सर्गारंभ में सृष्टिगत सभी पदार्थों के नामों को धारण करने वाला नित्य ज्ञान जो प्रथमा वाक् के रूप में ऋषियों के माध्यम से हम सबको प्राप्त हुआ। यह शास्त्र सम्मत सिद्धांत है कि नित्य कारण का कार्य भी नित्य होता है। अतः वेद स्वयं अपनी नित्यता का प्रमाण देता है,

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया।
वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्। ऋग्वेद 8.75.6

हे विरूप, अर्थात्, हे अदृश्य आत्मशक्ति! तुम उस अतिशय दीप्तिमान और कामनाओं के वर्षक परमेश्वर के लिए नित्य, अर्थात्, उत्पत्ति-रहित मंत्ररूपी वाणी से उत्तम स्तुति का गान करो।

यहां यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है कि जब वेद नित्य है तो तदंतर्भूत इतिहास भी नित्य होना चाहिए, परंतु ऐसा नहीं है। इसके पीछे

कारण यह है कि सृष्टि के प्रारंभ में, प्रकटीभूत अपौरुषेय ज्ञान में पश्चाद्भावी घटना का वर्णन होना सर्वथा असंभव तथा असंगत है।

महाभारत में स्पष्ट शब्दों से यह लिखा गया है कि ऋषियों ने नित्य इतिहास-युक्त परमेश्वर में अंतर्निहित वेदों को तप से प्राप्त किया,

युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान् सेतिहासान्महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा।

यहां नित्य इतिहास से अभिप्राय है नित्य स्वरूप परमेश्वर के, प्रकृति और जीवात्मा के गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन करना, किसी राजा या धनपति का वर्णन नहीं।

वेद में अत्रि, भरद्वाज, इंद्र, वरुण, अगस्त्य, देवापि, शांतनु, उर्वशी-पुरूरवा, यम-यमी, आदि सभी नाम यौगिकप्रक्रिया से सृष्टिगत नित्य पदार्थों के वाचक हैं।

महर्षि मनु का वचन भी कुछ ऐसा ही है,

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे। मनुस्मृति 1.21

ऋषियों ने सभी नाम, कर्म और उनसे लक्षित पदार्थों की व्यवस्था को पहले वेद के शब्दों से ही जानकर अलग अलग बनाए।

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि वेद में आए सभी लौकिक व्यक्तिवाचक नामों से साम्य रखने वाले नाम नित्य पदार्थों के अभिधायक हैं। जो व्यक्तिवाचक नाम हैं, जिन्हें देखकर वेद में अनित्य इतिहास का बोध होता है, उन पर अब विचार करते हैं।

इस संबंध में भाष्यकार वेंकटमाधव ने कहा है, **ऋषीणां नामगोत्राणि दृष्ट्वा भ्राम्यन्ति लौकिकाः**, ऋषियों के नाम और गोत्रों को देखकर लौकिक लोग भ्रमित होते हैं। वे सभी नाम वेद से ही लेकर ऋषियों ने रखे थे–**देवो देवानां गुह्यानि नामानि आविष्कृणोति**, ऋषियों ने विद्वानों के, दिव्यपदार्थों के रहस्यमय नाम वेदों से आविष्कृत किए।

जब वेद से लेकर व्यक्तिवाचक नाम रखे गए तो वेद में उन व्यक्तियों का इतिहास कैसे हो सकता है? इतिहास तो उनका होगा जो वेद से पहले रहे हों।

परंतु इसके विपरीत सायण, महीधर, ग्रिफिथ, विल्सन, आदि अनेक वेद भाष्यकारों व अनुवादकों ने वेद में लौकिक नामों को देखते हुए लौकिक इतिहास निकालने के प्रयास किए हैं। इन भाष्यकारों द्वारा वेद में लौकिक ऐतिहासिक पक्षोत्पत्ति के निम्नलिखित चार कारण दृष्टिगोचर होते हैं :

1. वेद में क्रियाओं के उन रूपों के प्रयोग जो लोकभाषा में भूतकाल को बतलाने के लिए प्रयुक्त होते हैं।

2. वेद में वे अनेक नाम जो लौकिक इतिहास में बहुधा सुने जाते हैं।

3. वेद के सूक्तों के साथ अनेक ऋषियों के नामों का जुड़ना, जो वेदमंत्रों के अर्थद्रष्टा न माने जाकर कर्त्ता माने जाने लगे।

4. यास्ककृत वेदार्थसहायक निरुक्त, जिसमें यास्क कहते हैं, **तत्रेतिहासमाचक्षते, इत्यैहासिकाः, इतिहासपक्ष इति**, 'वहां ऐसा इतिहासकार कहते हैं, यह ऐतिहासिक कथन है, यह ऐतिहासिक पक्ष है।'

उपर्युक्त प्रमाणों से आख्यानपूर्वक वेदार्थ करना अनित्य इतिहास समर्थकों के लिए एक आधारभूत कारण बन जाता है। इन सभी का समाधान क्रमशः निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है।

एक जगह यास्क लिखते हैं, **अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यम्** (निरुक्त 1.5.1), अर्थात्, निरुक्ताध्ययन के बिना मंत्रों के अर्थों का ज्ञान असंभव है क्योंकि निरुक्त वेदार्थप्रतिपादक और व्याकरण का पूरक है।

पतंजलि महाभाष्य में लिखते हैं, **रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्**, वेदों की रक्षा के लिए, वेदों के यथोचित अर्थज्ञान के लिए वेदार्थमूल व्याकरण का अध्ययन करें।

पाणिनि कहते हैं, **छन्दसि लुङ्लङ्लिटः** (पाणिनि सूत्र 3.4.6), वेद में भूतकालिक लुङ्, लङ् और लिट् ल-कारों के प्रयोग सार्वकालिक होते हैं, तीनों कालों में होते हैं, केवल भूतकाल विषयक ही नहीं।

इनसे स्पष्ट है कि हमें वेद में प्रयुक्त लुङ्, लङ् और लिट् लकारों के 'बभूव', आदि प्रयोगों को देखकर इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि यहां भूतकाल विषयक कथा या कहानी का निर्देश है।

उसी प्रकार पतंजलिकृत महाभाष्य (3.3.1) में उद्धृत, **नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्**, इस वचन से वैयाकरणों में शाकटायन और निरुक्त सभी शब्दों को धातुज, अर्थात्, प्रकृति प्रत्यय से उत्पन्न मानते हैं। निरुक्तकार यास्क ने तो यहां तक कह दिया कि **अक्षरवर्णसामान्यान्निर्ब्रूयान्नत्वेव न निर्ब्रूयात्** (निरुक्त 2.1.3), अक्षरवर्ण की समानता को देखकर, प्रकृति प्रत्यय की कल्पना कर निर्वचन करें। बिना निर्वचन के ऐसा कुछ भी स्पष्ट न करें।

इस प्रकार वेदार्थप्रक्रिया में द्वितीय ध्यातव्य विषय है यौगिकवाद। जब यौगिकप्रक्रिया से लौकिक, वैदिक शब्दों के भेद को व्यक्ति समझ लेता है तब वेदमंत्रों के अर्थ आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं में संगत हो जाते हैं और इंद्र, कण्व, अंगिरा, आदि आख्यातज शब्द **सर्वे सर्वार्थवाचकाः** (महाभाष्य) को सिद्ध करते हुए व्यक्ति विशेष में रूढ़ि न होकर नित्य इतिहास का प्रतिपादन करते हैं।

यौगिकवाद का मूल हमें ऋग्वेद के प्रथम मंत्र '**अग्निमीळे पुरोहितम् ...**' में मिल जाता है जिसका अर्थ करते हुए भाष्यकारों ने 'पुरोहितम्, यज्ञस्य देवम्, ऋत्विजम्, होतारम्, रत्नधातमम्' इनको समुच्चायक न मानकर अग्नि का ही विशेषण माना है।

इस प्रकार व्याकरण के जीवित रहते हुए वेद में क्रियाओं का भूतकालिक अर्थ करना और रूढ़िवाद को मानना वेदमंत्रों पर अत्याचार करना ही है।

यास्ककृत निरुक्त में **तत्रेतिहासमाचक्षते**, आदि वचनों को देखकर यास्क को अनित्य इतिहासवादी कहना भूल है। यास्क स्वयं निरुक्त में कहते हैं **ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यानसंयुक्ता**, अर्थात्, मंत्रार्थद्रष्टा ऋषियों की आख्यान से युक्त आलंकारिक बातों को कहने में प्रीति होती है।

जैसा कि लोक में ही हम देखें कि माता-पिता बच्चों को कहानी के माध्यम से कई शिक्षाएं देते हैं क्योंकि कहानी उन्हें रुचिकर होती है। अतः यह सुस्पष्ट है कि यास्कमुनि मंत्रों की व्याख्या करते समय, आख्यानात्मक वर्णन में सामान्य बुद्धि वाले लोगों के प्रति सरलीकरण करने को ही कारण बतलाते हैं। निरुक्तभाष्यकार स्कंदस्वामी भी यास्क

की इस परिभाषा की पुष्टि करते हुए कहते हैं **सुखप्रतिपत्यर्थम् इतिहासमाचक्षते**, अर्थात्, मंत्रार्थ को सुखपूर्वक बोधगम्य कराने के लिए आचार्यगण इतिहास का आख्यान करते हैं।

उदाहरण के लिए ऋग्वेद का यह मंत्र लें,

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः।

ऋग्वेद 1.32.10

अर्थ : कहीं न ठहरते हुए, जिनकी कहीं रोक-थाम नहीं ऐसे अस्थावर जलों के बीच में वृत्र का शरीर स्थित है। जब वे जल वृत्र के निम्न प्रदेश में विचरते हैं, तब इंद्रशत्रु वह वृत्र घने अंधेरे को फैला देता है।

मंत्र में जो वृत्र शब्द आया है, इसका अर्थ करते हुए यास्क लिखते हैं, **तत् को वृत्रः**, वृत्र किसे कहते हैं? **मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः**, अर्थात्, नैरुक्तों के मत में वृत्र नाम मेघ का है और ऐतिहासिकों के मत में वृत्र नाम त्वष्टा पुत्र–त्वाष्ट्र असुर का है।

इंद्रशत्रु त्वाष्ट्र असुर शब्द देखकर मंत्र में जो संग्राम का वर्णन प्रतीत होता है कि इंद्र का वृत्र के साथ संग्राम हुआ, यह युद्ध वर्णन उपमारूप में है, **तत्र उपमार्थेन युद्धवर्णाः भवन्ति**, ऐसा यास्क स्पष्ट कहते हैं। इसका वास्तविक अर्थ है, **अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते**, अर्थात्, मेघ और विद्युत् के संघर्ष से वृष्टि कर्म होता है।

इंद्र का कोई भी शत्रु नहीं है। ऋग्वेद में कहा है कि **मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से** (ऋग्वेद 10.54.2), अर्थात्, जो भी ऐतिहासिक रूप में युद्ध वर्णित है वह सब तुम्हारी माया है क्योंकि न आज तुम्हारा कोई शत्रु है, न था और न होगा, यह तुम स्वयं जानते हो।

इस प्रकार यास्क ने अनेक मंत्रों में **अचेतनेषु चेतनवदुपचारः**, अचेतन पदार्थों में चेतन के समान व्यवहार करते हुए आख्यान के रूप में अर्थ किए हैं, जिनमें वास्तविक रूप से नित्य इतिहास का ही कथन है।

न केवल यास्क अपितु स्कंदस्वामी भी अपने निरुक्त भाष्य में यास्कसम्मत इतिहास का ही पक्ष लेते हैं, यथा, **एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमानेषु नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धान्तः। औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यानसमयः। परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति।**

अर्थ : जिन मंत्रों में आख्यान, इतिहास जैसा कुछ दृष्टिगोचर हो, उन मंत्रों में नित्य पदार्थ की योजना कर लेनी चाहिए। यही निरुक्तशास्त्र का सिद्धांत है। मंत्रों में आख्यान औपचारिक गौण है। वास्तव में तो नित्य पक्ष ही मंत्रों का विषय है।

स्कंदस्वामी ने न केवल निरुक्त प्रतिपादक नित्य इतिहास पर बल दिया है, अपितु **एष शास्त्रे सिद्धान्तः** कहकर निरुक्तशास्त्र का सिद्धांत ही प्रतिपादित किया है, जिसके बाद कुछ कहना शेष नहीं रह जाता।

स्कंदस्वामी से पूर्ववर्ती आचार्य वररुचि ने भी अपने 'निरुक्तसमुच्चय' नामक ग्रंथ में स्कंदस्वामी के समान कहा,

औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यानसमयो नित्यत्वविरोधात्।
परमार्थेन तु पक्ष इति नैरुक्तानां सिद्धान्तः।

अर्थ : मंत्रों में आख्यान औपचारिक है क्योंकि इतिहास मानने से वेद के नित्यत्व में विरोध हो जाएगा। परमार्थ से तो नित्यपक्ष ही है।

इसी मत के पोषक दुर्गाचार्य भी एक स्थल पर लिखते हैं, **स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः तदर्थप्रतिपतॄणाम् उपदेशत्वात्**, अर्थात्, यह सब प्रकार का इतिहास निःसंशय नित्य तथा अविवक्षित स्वार्थ है, यानी, यह इतिहास अपने अनित्य इतिहासार्थ को नहीं कहता क्योंकि यह उस नित्य अर्थ को जानने वाले लोगों के लिए केवल उपदेशपरक ही है। वास्तव में यहां कोई इतिहास नहीं है।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि वेद में अनित्य इतिहास लेशमात्र भी नहीं है। **पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति** (अथर्ववेद 10.8.32), 'यह परमात्मा का अजर-अमर, महाकाव्य है। इसे देखो-इसकी समीक्षा करो।' इसमें आलंकारिकरूप से किसी भी पदार्थ द्वारा विषय का प्रतिपादन किया जा सकता है।

महाभाष्य भी यही बात कहता है,

व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणम्।

अर्थ : व्याख्यान से मंत्रांतर्गत विषय की गवेषणा करनी चाहिए। संदेह से अनित्य इतिहास का प्रतिपादन नहीं करना चाहिए।

इसके बाद भी यदि सायणादि भाष्यकार अनित्य इतिहासपरक अर्थ करते हैं तो उनकी वही स्थिति है,

नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति पुरुषापराधः स भवति। निरुक्त 1.16

अर्थ : यह खूंटे का अपराध नहीं है कि जिसको अंधा नहीं देख पाता और ठोकर खा जाता है, यह पुरुष का अपराध है कि वह अंधे की तरह चल रहा है।